संत रैदास के काव्य में सामाजिकता

–डॉ. अजायब सिंह,
सह–आचार्य, हिन्दी–विभाग, मुकन्द लाल नेशनल, कॉलेज,
रादौर (यमुनानगर)

मध्ययुगीन भारतीय लोकजीवन में भक्तों, 'संतो' और 'लोकधर्मों' से संबंधित गुरुओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। संत रैदास जी का इस परंपरा मे महत्वपूर्ण एवं शीर्ष स्थान है, जो धार्मिक एव सामाजिक क्षेत्र में एक युगांतर उपस्थित किया तथा धर्म को घोर कट्टरता और संकीर्णता के दलदल से निकालकर एक उदार आधार प्रदान किया है।

संत रैदास जी का जन्म ऐसे समय में हुआ जब समाज अनेक बुराईयों से ग्रस्त था। छुआछूत, अंधविश्वास, रूढ़ि विरोध, मिथ्याचार, एवं पाखंड आदि का बोलबाला था और हिन्दू–मुसलमान आपस म झगड़ते रहते थे। धार्मिक पांखड अपनी चरम सीमा पर था और धर्म के ठेकेदार स्वार्थ की रोटियाँ धार्मिक उन्माद के चूल्हे पर सेंक रहे थे। धार्मिक कट्रता और संकीर्णता के कारण समाज का संतुलन बिगड़ रहा था। कुरीतियों एव कुप्रथाओं का बोलबाला था तथा सामाजिक विषमता बढ़ती जा रही थी। उस समय किसी ऐसे महात्मा या समाज सुधारक की आवश्यकता थी, जो समाज में व्याप्त इन बुराईयों पर निर्भिकता से प्रहार कर सके, दोनों धर्मों के अनुयायियों का बिना किसी भेद–भाव के फटकार सके और सदाचरण का उपदेश देकर सामाजिक समरसता की स्थापना कर सके। संत रैदास इस आवश्यकता की पूर्ति अपनी मार्मिक वाणी से करत थे। संत रैदास चाहत हैं कि हिन्दू–मुलसमान द्वेष–घृणा भूल कर प्रेम एव भाईचारे की भावना से एक साथ मिलकर रहें। उन्होंन राम और रहीम की एकता स्थापित करत हुए बताया कि ईश्वर दो नहीं हो सकते। यह तो लोगों का भ्रम है जो खुदा को परमात्मा से अलग मानते हैं।

संत रैदास 'भक्त' और 'कवि' बाद मे ह, समाज सुधारक पहले हैं। उनकी वाणियों का उद्देश्य जनता को उपदेश देना और उसे सही रास्ता दिखाना है। उन्होंने जो गलत समझा उसका निर्भिकता से खंडन किया। अनुभूति की सच्चाई और अभिव्यक्ति की ईमानदारी संत रैदास की सबसे बड़ी विशेषता है।

जाति व्यवस्था :

संत रैदास जी का जन्म ऐसे समय में हुआ जब समाज के हर क्षेत्र में विषमता द्वेष और वैमनस्य व्याप्त था। धर्म, समाज और दर्शन आदि सभी क्षेत्रों में टकराव था।

जिस समाज में संत रैदास जी जैसे श्रेष्ठ सत्पुरूष का जन्म हुआ था वह समाज किस प्रकार हीन है? संत रैदास जी जाति से हीन नहीं क्योंकि किसी भी चर्मकार की जाति हीन नहीं हो सकती। उनके व्यवसाय पर हीनत्व (ऊँच–नीच) और श्रेष्ठत्व का समावेश नहीं किया जाता बल्कि वे ज्ञान से, गुण से श्रेष्ठत्व सिद्ध होते है। कबीर, सेना, नरहरी, तुकाराम आदि संत ऐसे है जो विभिन्न निम्न जाति मे जन्में थे फिर भी उनके विचार सर्वाधिक प्रभावित करने वाले थे तथा कौन ब्राह्मण, कौन, क्षत्रिय, कौन नोच यह सभी योगायोग की बातें है। जिस समय वर्ण–भेद का निर्माण हुआ है उस समय समाज ने अपना सुख देखा था और समाज में विद्वान पंडित वर्गों ने अपने के लिए इस प्रथा का प्रयोग करने पर ऊँच–नीच का बँटवारा किया परन्तु उसके आगे आने पर कई लोगों ने इस अर्थ का अंदाजा गलत लगाया और अपनी रोजी रोटी के लिए काम करने वाले जाति को उसी ही नाम से पुकारने लगे। तथा ऊँच–नीच का भेद–भाव और समाज की दुर्दशा की स्थिति मध्यकाल तक पहुँच चकी थी। उस काल से आज तक इस अन्याय के खिलाफ लढ़ाई शुरु हुई, विविध प्रकार के जाति के लोग एकत्र होने लगे और समानता के गीत गाने लगे, उसमें संत रैदास जी भी चर्मकार समाज के प्रतिनिधि बने और उनके उस दिव्य वाणी से अलौकिक चरित्र चित्रण से सारा समाज प्रभावित हुआ। संत रैदास जाति का विरोध करते हुए कहते हैं–

''ऐसी मेरी जाति बिख्यात चमार।
हृदय राम गोविंद गुन सार।।
''जाति भी ओछी करम भी ओछा कसब हमारा।
नीचे से प्रभु ऊँचा किए हैं कह रविदास चमारा।''[1]

जाति भी नीच है व्यवसाय (काम) भी कम दर्जे का और अपने सारे कार्य (काम) हीन दर्जे के हैं, परन्तु उस नीच पर प्रभु कृपा से हम उस पर तीर लगाने में सफलता पाएँ हैं, ऐसे रदास जी कहते हैं, कि यहाँ सर्वागोंण दृष्टि से इस आत्मविश्वास के साथ ही चमार घर

का रैदास 'संत रैदास' बन गया, जन्म से प्राप्त जाति और पारिवारिक व्यवसाय किसी भी प्रकार का हो पर मानवीय प्रतिष्ठा अतः उसका प्रत्यक्ष रूप कर्तव्य से सिद्ध हुआ है। उन्होंने अपना समस्त जीवन आत्मसाधना करते हुए 'सर्वजन हिताय' तथा 'सर्वजन सुखाय' के लिए अर्पित कर दिया था। वे अपने भक्तिमय सशक्त व्यक्तित्व द्वारा निम्न वर्ण का ही नहीं, अपितु देश में फैली बुराइयों को मिटाकर सभी वर्गों के लोगों का उद्धार करना चाहते थे। उन्हें निर्भय बनाकर स्वच्छ, सुखी तथा स्वतंत्र जीवन व्यतीत करने में समर्थ देखना एवं बनाना चाहते थे। परंपरा से चली आ रही कुरीतियों एवं बुराइयों से समाज को छुटकारा दिलाना उनका परम लक्ष्य था। स्वतंत्रता तथा मानवता का हनन करने वाले की स्थापना करना चाहते थे। जिसमें सभी आडंबरों और जन्मजात भेद–भाव का नाम भी न हो। मानव–मानव में भेद न रहे लौकिक एवं पारलौकिक साधना में भी कोई भेदभाव न हो। संत रैदास जी का ऐसा प्रयास रहा कि समाज को ईश्वरीय प्रेम का पाठ पढ़ाकर मनुष्यता को सच्चे पथ पर अग्रसर किया जाए।

संत रैदास जी की वाणी से स्पष्ट होता है, कि जाति–पाति कुछ नहीं है, सभी मनुष्य ईश्वर की संतान है। कभी वे इन्हें मानव जाति का रोग ठहराते हैं और कभी कर्म से ही जाति को निर्धारित बताते है। जाति–पाँति के भेद–भाव पर जो जन भोग अत्याचार करते थे उन्हें समझाते हुए रैदास कहते हैं–

जन्म जात मत पूछिए, का जात अरुपात।''
रविदास पूत सब प्रभु के, कोउ नाहीं जात–कुजात।।''[2]

वह युग मूलतः धर्म से अनुप्राणित करती थी। इसीलिए धार्मिक चेतना ही सामाजिक मूल्यों का बहुतायत से निर्धारण एवं नियंत्रण करती थी। इसीलिए धार्मिक क्षेत्र में भी रैदास जी ने दोष निवारण का सहज प्रयत्न किया। संत रैदास जी ने कबीर की तरह विद्रोह तो नहीं किया लेकिन मर्मस्पर्शी मधुर वाणी का उन्होंने आश्रय लिया है। संत रैदास जी को वाणी के अध्ययन से स्पष्ट है कि उनकी वाणी में मुख्यतया मानव जगत में व्याप्त विषमता के स्थान पर समता स्थापना और प्रत्येक मनुष्य को उचित आदरभाव, मान मर्यादा तथा मानवीय सम्मान देने की अभिलाषा व्यक्त की है।

संत रैदास जी का युग हिंदू–मुस्लिम में तनाव का युग था, उस समय मुस्लिम ने भारत पर आक्रमण से अपना अधिकार प्राप्त किया था। उस समय सभी हिंदू जनता को जबरदस्ती से मुस्लिम बनाने के प्रयास में संलग्न थे। इस अस्थिर परिस्थिति में संत रैदास जी हिंदू–मुस्लिम एकता पर बल देते हुए कहते हैं कि ''सबमें एक ही ज्योति का प्रकाश है: इसलिए सब में प्रेम भाव होना चाहिए।''

''मुसलमान सो दोस्ती हिंदुअन सों कर प्रीत ।
रविदास जोति सम राम की सबहै अपने मीत।।[3]

उनकी दृष्टि में मंदिर–मस्जिद एक है, राम रहीम भिन्न नहीं, काबा काशी में उन्हें कोई अंतर नहीं दिखाई देता है। संत रैदास मंदिर और मस्जिद दोनों से घृणा करते हैं, क्योंकि उन दोनों में उन्हें न राम दिखाई देता है न रहीम। जब हिन्दू–मुसलमान दोनों के हाथ, पाँव, नाक, कान एक जैसे है तो उन्हें भिन्न कैसे समझा जा सकता है? वास्तव में हिंदू और मुसलमान का संबंध तो कनक कंगन जैसा है–

''मंदिर मसजिद दोउ एक हैं, इन मेह अंतर नाहि।
रविदास राम रहमान का झगडउ कोउ नाहिं।।
रविदास हमारो राम जोई साई है रहमान।
काबा कासी जानी यहि दोउ एक समान।।
मसजिद सो कछु धिन नहीं, मंदिर सों नहीं पिआर।
दोउ मह अल्लह राम नहीं कहै रविदास चमार।।
जब सब करि दोई, हाथ पग दोउ नैन दोउ कान।
रविदास पृथक कैसे भये हिंदु मुसलमान।।
रविदास कंगन अरू कनक महिं जिमि कछु अंतर नाहिं।
तैसेउ अंतर नहीं हिंदुअन तुरकन मांहि।।''[4]

संत रैदास जी में वास्तविकता यह है कि जो समाज सुधार के लिए क्रांतिकारी कार्य किया। वह इतिहास में अपना विशेष स्थान रखता है। इसके संबध में महात्मा गाँधी ने कहा है ''लोगों की सेवा करने में जो प्रेरणा मुझे संत रैदास से प्राप्त हुई है उसकी रोशनी में मैं समाज का आँगन बुहार रहा हूँ।''

समाज में समता की स्थापना के इसी उद्देश्य से ही प्रेरित होकर रैदास जी ने चारों वर्णों की नए ढंग से परिभाषा की है–

ब्राह्मण

''ब्राह्मण कुल में जन्म लेने से ही कोई ब्राह्मण नहीं होता, जो व्यक्ति विषय वासनाओं से दूर होकर ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है वही ब्राह्मण है।''

''ऊँचे कुल के कारणे, ब्राह्मण कोय।
जउ जानहि ब्रह्म आत्मा, रविदास' कहि ब्राह्मण सोया।''[5]

क्षत्रिय

जो दीन–दुखियों के लिए अपने प्राण न्योछावर कर देता है वही क्षत्रिय है।

''दिन–दुखी के हेत जउ बारै अपने प्रान ।
रविदास उह नर सूर कौ, सांचा छत्री जान।।''[6]

वै□य

जो नेक कमाई करता है, वही वैश्य है।

''रविदास वैस सोई जानिए, जड सत् कार कमाय।
पुन कमाई सदा लहै, लोरे सर्वत सुखाय।''[7]

शुद्र

जो अत्यंत पवित्र है, सेवाकार्य करता है और अंहकार से रहित है वही सच्चा शूद्र है।

''रविदास जउ अति पवित्र है, सोई सूदर जान।
जउ कुकरमी असुध जन तिन्ह ही न सूदर माना।।''[8]

इस तरह संत रैदास जी ने विषम सामाजिक परिस्थिति में दीन–दलित लोगों पर होने वाले ऊँच–नीच के भेद–भाव को नष्ट करने तथा समानता की भावना को निर्माण करने का प्रयास किया है। यह हमें उनके वाणी में से स्पष्ट दिखाई देता है। संत रैदास जी समता–मूलक समाज की स्थापना करने में समर्थ होते ह और एक स्पप्न की नगरी

जहाँ ऊँच–नीच भाव का विरोध बह्माडंवरो का खंडन हो 'सर्वे भवन्तु सुखिन' के अनुसार समाज की स्थापना करना चाहते हैं और इस संबंध में कहते हैं–

''अब हम खुब वतन घर पाया।
ऊँचा खेर सदा मेरे भाया।।टेक।।
बेगमपूर सहर का नाम।
फिकर अंदेस नहीं तेहि ग्राम।।
नहिं जहाँ सासत लानत मार।
हैफ न खता न तरस जवाल।।
आव न जान रहम औजूद।
जहा गनी आप बसै माबूद।।
जोई सैलि करै सोइ भावै ।
महरम महल में को अतकावै ।।
कह रैदास खलास चमारा।
जो उस सहर सो भीत हमारा।।[9]

इस प्रकार 'बेगमपुर' में किसी को कोई दुख दर्द नहीं होगा। वहाँ किसी भी प्रकार का ऊँच–नीच भाव नहीं होगा और हर कोई हर प्रकार से सुखी जीवन व्यतीत करेगा। रैदास जी कहते हैं– मेरा मित्र नहीं होगा जो इस 'बेगमपुर' का निवासी होगा। जहाँ पर 'सर्वे भवन्तु सुखिन' होगा। समाज सुधार की आधार–शिला व्यक्ति का सुधार है। सब से पहले व्यक्ति को नैतिक दृष्टि से ऊँचा उठाना होगा। उसे अंदर–बाहर से आदर्श मानव बनाना होगा तभी समाज उन्नत हो सकेगा। इसलिए संत रैदास जी ने व्यक्तिगत सचरित्रता स्वच्छता तथा सरलता पर बल देते हुए कहां है कि मौत का सदा याद रखो, सदा सत्य बोलो, श्रम साधना करो, पंच विकारों से त्याग करो। उनकी उदारता ने समस्त मानव जाति को एकता के सूत्र में बांध दिया और जातिगत भेद को व्यर्थ बताया क्योंकि सारे मनुष्यों को बनाने वाला एक है। इसलिए सब की एक ही जाति है। इस बात को वे अधिक स्पष्ट रूप से कहते है–

''एकै माटी के सभ भांडे, सब का एकौ सिरजन हार।
रविदास व्यापै एकौ घट भीतर, सबको एकै घड़े कुम्हार।।'[10]

इस तरह संत रैदास जी की दृष्टि मानवतावादी थी। वे मानव को केवल मानव होने के नाते समझते हैं। वहाँ मान–मर्यादा, धन–दौलत, कुल–जाति आदि का कोई स्थान नहीं। वे जातिवाद के कट्टर विरोध करते हुए एक ही माटी के पुतल हैं। जैसे पेड़ एक ही है और उसके पौधे अलग–अलग है वैसे मानव जाति एक ही है।

परिवार/पारिवारिक स्थिति

सामाजिक ढाँचे की महत्वपूर्ण इकाई परिवार ही है। यह मानव जाति के जीवन संरक्षण वंशवर्धन तथा जातीय जीवन की निरंतरता को बनाए रखने का प्रधान साधन है। परिवार समाज में व्यवस्था बनाए रखने में सहायता करता है वह पारिवारिक सदस्यों पर नियंत्रण रखकर सामाजिक नियंत्रण को बनाए रखता है। परिवार के अंदर ही व्यक्ति में ऐसी आदतें डाली जाती हैं, जो सामाजिक व्यवहार के स्वीकृत मानदंडो के अनुरूप व्यवहार करने के लिए उसे प्रेरित करती है। व्यक्ति का संपूर्ण जीवन–परिवार की सीमाओं के अंदर रहकर ही एक नियमबद्ध रूप में कार्य करता है। इसलिए परिवार समाज की एक मौलिक और आधारभूत संख्या है।

परिवार की दो पद्धतियों के चित्र हमें समाज में देखने को मिलते हैं, जिसमें एक ऐसा परिवार होता है जहाँ पर अपने हाथों में पूरा कारोबार संभालते हुए सभी को आनंदित करते और सुख–दुख मिलकर बाँट लेते है। वहाँ पर क्रोध, घृणा, द्वेष नहीं होता बल्कि संगठित होते ह। तथा दूसरी पारिवारिक स्थिति ऐसी है जहाँ पर बचपन से ही क्रोध, घृणा, द्वेष झगड़े चलते रहते है। उसके साथ में भाई–भाई का, बेटा–पिता का, माता–पिता का अपने बच्चों पर उसका प्रभाव पड़ता है। उसी का अनुकरण बाद में बड़े होने पर बेटा अपने माता–पिता पर करने लगता है।

संत रैदास जी के समकालीन पारिवारिक स्थिति का चित्र भी वैसा ही है। रैदास जी के परिवार में बचपन में से संत रैदास साधु–संतों की सत्संग सुनने, भजन गाने की आदतें पड़कर उसे अपने पारिवारिक व्यवसाय की ओर दुर्लक्ष कर देते हैं परन्तु माता–पिता के कारण संत रैदास जी अपना व्यवसाय संभालते ह। व्यवसाय करते समय भी उन्होंने भक्ति

में खंडन नहीं किया वह साधु–संतों की सेवा करते हुए उनको जूते भी मुफत में दिया करते थे।

इस स्थिति को देखकर रैदास जी के माता–पिता ने रैदास जी को विवाह बद्ध किया ताकि वह सही मार्ग पर आ जाए और अपना परिवार में हाथ बटाएँ परन्तु रैदास जी की पत्नी के सहयोग से भी रैदास जी अपने वाणी से समाज सुधार करने में तथा भक्ति में मग्न रहने लगे।

नारी चित्रण

कवि मन में नारी के प्रति श्रद्धा होती है। नारी को भक्त कवियों ने सम्मान की दृष्टि से भी देखा है तथा तिरस्कार की दृष्टि से भी कबीर ने नारी का विरोध नहीं किया है उसको उन्होंने माया, भगिनि आदि कहकर उस प्रवृत्ति का विरोध किया है। जैसे संतों ने यहाँ पर नारी की झाँई पड़ने से भुजंग भी अंधा हो जाता है। तथा तुलसी जैसे भक्तों के यहाँ ढोर, गँवार तथा शूद्र की भाँति नारी 'ताड़न की अधिकारी' बनती है परन्तु वही पर तुलसी ने रामचरित मानस से दशरथ के परिवार का चित्रण एक आदर्श परिवार में किया है। जहाँ पर सीता का उल्लेख मूल रूप से किया। उसी तरह नारी संत रैदास जी के द्वारा यहाँ पति–परायण होकर उपस्थित होती है। नारी उनके लिए प्रेरणा स्रोत्र है, जिसका संयोग तथा वियोग कवि के लिए साधना का आदर्श बनता है।

''सहकी सार सुहागिनी जानै।
तज अभिमान सुख रलिया मानै।।
तनु मनु देइ न सुनै न अंतर राखै।
अवरा देखिन सुनै न माखै।''[11]

कहने वाले संत रैदास जी हृदय की सच्ची भक्ति में भारतीय नारी को 'पतिपरायणता' के रूप में प्रस्तुत करते है। जिस प्रकार भारतीय नारी पति को सर्वस्व अर्पित करके इसके अतिरिक्त किसी अन्य की ओर आँख उठाकर तक नहीं देखती।

बाह्याड़ंबरों का विरोध

संतों ने बाह्ाडंबरों का तीव्र विरोध किया है। धर्म के नाम पर मिथ्याचारों के प्रथा तथा मुस्लिम और हिंदू पुजारियों ने सर्व सामान्य लोगों का बाह्ाचारों के नाम पर अत्याचार, लूटपाट किया करते थे। इन लोगों का विरोध करते हुए रैदास कहते है–

''सोयी काया, सोयी माया, सोया हरिबिन जनम गँवाया।
सोया पंडित, सोयी बानी, सोयी हरिबिन सदौ कहानी।।''[12]

राम राज्य

खाने के लिए रोटी, पहनने के लिए कपड़ा और रहने के लिए मकान तो हर व्यक्ति को मिलना ही चाहिए। रैदास जी के समय में समस्या जितनी विकराल थी, उतनी ही आज भी है। इस समस्या के समाधान के लिए अपना जीवन दर्शन प्रकट करते हुए रैदास जी ने कहा कि जब हम अपने पैतृक व्यवसाय को अपनाकर, श्रम–साधना करके आत्मनिर्भर हो जाएँगे और धन जोड़ने की इच्छा का परित्याग कर देगें तो सब को रोटी, कपड़ा और मकान निश्चित रूप से प्राप्त हो जाएगा। उनकी यह समाजवादी उत्कंठा इन शब्दों में प्रकट हुई–

''ऐसा चाहू राज मैं, जहाँ मिले सवन को अन्न।
छोटे बड़ों सब सम बसै रविदास रहै प्रसन्ना।।''[13]

अर्थात् मै तो ऐसा राज्य चाहता हूँ कि जहाँ सबको खाने के लिए अन्न मिल सके, वहाँ का कोई भी निवासी भूखा न रहे, और जहाँ छोटे–बड़े समझे जाने वाले सब लोग एक समान सुखमय जीवन बिता सके। उन्हें एक सी ही खुशहाली प्राप्त हो, जिसमें वे एक जैसे प्रसन्न रहसके।यही राम–राज्य हैं। जहाँ 'सर्वे भवन्तु सुखिन' है। लोक मंगल का भाव हो वही पर है जहाँ पर 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' हो।

साधु संगतियों का विरोध

संत रैदास जी के काल में समाज साधु–संगतियों से तथा धार्मिक विडंबना में छिन्न–भिन्न हुआ था उसी समय संत रैदास जी इस समाज की दूरव्यवस्था को देखकर प्रहार करते हुए कहते हैं–

''रविदास सोई साधु भलो, जउ जग मंहि त्रिपतन होय।
गोविंद सों रांचा रहइ, अरु जानहिं कोय।।

रविदास सोई साधु भलो, जउ रहइ सदा निरवैर ।
सुखदाई समता गहइ, सभनह मांगहि खैर।।[14]

साधु तो वही भला है, जो संसार के माया जाल में उलझता नहीं है, और संसार में लुप्त नहीं होता है। तथा जो किसी के प्रति वैर विरोध और द्वेष की भावना मन में न रखता हो जो दूसरों को सुख पहुचाने वाला सबके साथ समान व्यवहार करने वाला हो और सबका कल्याण चाहने वाला हो वही आदमी सही रूप में साधु कहलाता है।

पण्डे–पुजारियों का विरोध

संत रैदास जी स्वच्छंद विचार के थे। वे मानवतावादी आस्था के साथ समाज में सुधार लाना चाहते थे। अतः उन्होंने धार्मिक तथा सामाजिक क्षेत्र में जहाँ भी कहीं प्रगति को रोकने वाली रूढियों देखीं, वहीं उनका डटकर खण्डन किया तथा धर्म के ठेकेदार बनने का दमन करने वाले पण्डे–पुजारियों, ढोंगी साधु–फकीरों तथा मल्लाओं को संत रैदास ने खूब फटकारा है। आंडबर परायण पुजारियों की सारी पूजा ही व्यर्थ है क्योंकि वह पवित्र चेतना से अभिमंडित नही। जहाँ पर पुजारी भगवान की पूजा करने के लिए जिस दूध का प्रयोग करते हैं, उसे तो थन चूहाते हुए बछड़ा ही जूठा कर चुका है। फूल को भौरे ने ही उच्छिष्ट कर दिया है। अब किसी पवित्र फूल एवं सामग्री के अभाव में भगवान की पूजा कैसे की जाए? इस प्रकार आप मानव जाति म भेद–भाव मानते अपशकुन मानते हैं, तब इस प्रकार अपवित्र तत्वों से पवित्र भगवान की पूजा कैसी हो सकती है?

''दूधु त बछरें थनहु बिटरिओं।
फूलु भवरि जउ मीनि बिगारियों
माई गोविंद पूजा कहाँ तै चरावउ।
अवरु न फूलु अनूपु न पावउ।।''[15]

इस प्रकार संत रैदास जी ने पूजा का औपचारिकता का कितना सहज और स्वाभाविक विरोध कर पूजादि को संचेत किया है।

निष्कर्ष

संत रैदास जी एक महान समाज सुधारक, सत्य धर्म के प्रतिपादक, समन्यवादी तथा क्रांतिदर्शी थे। वे समाज में प्रचलित प्रत्येक प्रकार की असमानता और ढोंग को समाप्त कर

देना चाहते थे लेकिन वह काम स्पष्टवक्ता, दृढ–विवेकी और निर्भीक व्यक्ति ही कर सकता है।

निश्चय ही संत रैदास जी का व्यक्तित्व क्रांतिकारी चेतना से युक्त था। उन्होंने अपनी मार्मिक वाणियों से समाज सुधार का जो प्रयास किया वह अद्वितीय है। वर्तमान युग के तथा कथित समाज सधारक भी ऐसा साहस नहीं दिखा सकते, जो संत रैदास जी ने सामाजिक उन्माद से ग्रस्त तत्कालीन युग में दिखाया था। एक सच्चे युग पुरूष की भाँति उन्होंने अंध–विश्वासों, रूढ़ियों, अनीति अनाचारों एवं दोषों पर तथा जाति व्यवस्था, परिवार चित्रण, नारी की स्थिति, पण्ड पुजारियों बाह्मचारों के विरोध पर प्रबल प्रहार करते हुए समाज को सही दिशा मे निर्देश देने का प्रयास किया है।

संदर्भ सूची :

1. संत रोहिदास, जीवन आणि वाड.मय, डॉ. अशोक कामत पृ. 31
2. रविदास दर्शन, आ. पृथ्वीसिंह आजाद, पृ. 124
3. युग पर्वतक संत गुरू रविदास, आ. पथ्वीसिंह आजाद, पृ. 186
4. वही, पृ. 161
5. वही, पृ. 160
6. वही, पृ. 160
7. वही, पृ. 160
8. वही, पृ. 160
9. संत रोहिदास, जीवन आणि वाड़मय, डॉ. अशोक कामत पृ. 166
10. युग प्रवर्तक संत गुरु रविदास, आ. पृथ्वीसिंह आजाद, पृ. 187
11. संत रोहिदास, जीवन आणि वाड.मय डॉ. अशोक कामत पृ. 120
12. वही, पृ. 66
13. संत रविदास वाणी एवं महत्व, मीरा गौतम, पृ. 76
14. रविदास दर्शन, आ. पृथ्वी सिंह आजाद पृ. 88
15. युग प्रवर्तक संत रविदास, आ. पृथ्वीसिंह आजाद, पृ.108